

भारतीय दर्शनों में आत्मा की अवधारणा

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारतीय दर्शनों में आत्मा जैसे सूक्ष्म विषयों का चिन्तन अधिक मिलता है। भारतीय मनीषियों का चिन्तन आत्मविषयक रहा है। उनके चिन्तन का मुख्य विषय आत्मा है। भारत के सभी दर्शनों में, सभी चिन्तनों में आत्मा ही केन्द्रीय सम्प्रत्यय है। वैदिक काल से लेकर आत्मविषयक जो विचारधारा चली उसी का पल्लवन प्रायः सभी दार्शनिकों के चिन्तन में दिखायी देता है। चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में आत्मविषयक चिन्तन दिखलायी पड़ता है। चार्वाक दर्शन जड़वादी दर्शन है। उसका मन्तव्य है कि आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है। पंचभूतों के समन्वय से चेतना का प्रादुर्भाव स्वतः हो जाता है। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन भी अनात्मवादी दर्शन है। बौद्धों का मानना है कि आत्मा नाम की कोई शाश्वत वस्तु नहीं है। जैन दर्शन आत्मा को शरीरव्यापी मानता है। सांख्य दर्शन में आत्मा को पुरुष कहा गया है। योग दर्शन में आत्मा पुरुषविशेष है। न्यायदर्शन वस्तुवादी दर्शन है। यहां पर आत्मा का सूक्ष्म चिंतन किया गया है। मीमांसा दर्शन कर्म को अधिक महत्व देता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार आत्मा नित्य, शुद्ध और सच्चिदानंद स्वरूप है। इस प्रकार सभी आस्तिक दर्शन किसी न किसी रूप में आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, क्योंकि आत्मा के अस्तित्व को माने बिना कर्म और पुनर्जन्म की व्याख्या ही नहीं की जा सकती। आत्मा ही एक ऐसा शाश्वत तत्त्व है जिसके आधार पर मानव अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है। मनुष्य जन्म के सिवा और जितनी योनियां हैं, सभी केवल कर्मों का फल भोगने के लिये ही मिलती हैं। मानव जीवन का परम लक्ष्य आत्मामृत की प्राप्ति ही है। वह आत्मा दो प्रकार की है, एक जीवात्मा दूसरी परमात्मा। परमात्मा या ईश्वर सर्वज्ञ है, और एक है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न व्यापक और नित्य है। आत्मा नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप बताया गया है। अपराविद्या वेद, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष आदि शास्त्रों का ज्ञान है और परा विद्या केवल अक्षरब्रह्म का ज्ञान है। जीवात्मा वास्तव में न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। यह जब जिस शरीर को ग्रहण करता है, उस समय

उससे संयुक्त होकर वैसा ही बन जाता है। जो जीवात्मा आज स्त्री है, वही दूसरे जन्म में पुरुष हो सकता है, जो पुरुष है, वही स्त्री हो सकता है। भाव यह है कि स्त्री, पुरुष और नपुंसक आदि भेद शरीर को लेकर हैं, जीवात्मा को लेकर नहीं। जीवात्मा सर्वभेदशून्य और सारी उपाधियों से रहित है। आत्मा को अमर, नित्य तथा अपरिणामी कहा गया है। आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, यह न ही किसी अन्य कारण से ही उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ अर्थान्तररूप से बना है। यह अजन्मा नित्य—शाश्वत और पुरातन है तथा शरीर के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता। गीता में भी कहा गया है कि यह आत्मा किसी काल में न तो जन्मता है और न मरता है तथा यह न उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है। यदि मारने वाला आत्मा को मारने का विचार करता है और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते, क्योंकि यह न तो मरता है और न मारा जाता है। गीता भी इसी बात को कहती है कि जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है। आत्मा की अनुभूति कैसे करें यह एक प्रश्न है। आत्मा की अनुभूति अनुभव जन्य है। श्रमण परम्परा में केवलज्ञान हो जाने के बाद जीव ईश्वर बन जाता है। आत्मा अपने मूल स्वरूप में स्थिर हो जाती है। यह अवस्था परम आनन्द की अवस्था है। क्योंकि इस अवस्था में आत्मा पर कर्मों का आवरण नहीं रहता है। आगमों में आत्मा को अमर और शरीर को विनश्वर माना गया है। जैन दर्शन आत्मा को शाश्वत मानता है और साथ ही परिवर्तनशील भी माना है। आत्मा परिणाम धर्मा है। परिणमन अनित्यता का लक्षण है। जैन दर्शन की दृष्टि में आत्मा नित्य तथा अनित्य दोनों है। आत्मा का चैतन्य स्वरूप कदापि नहीं छूटता, अतः आत्मा नित्य है। चेतन कभी अचेतन और अचेतन कभी चेतन नहीं बन सकता। आत्म प्रदेशों में परिवर्तन नहीं होता इस दृष्टि से आत्मा अमर है। आत्मा के प्रदेश कभी संकुचित रहते हैं, कभी विकसित रहते हैं, कभी सुख में, कभी दुःख में आत्मा के अनेक प्रकार की अवस्थाएं होती रहती हैं। इन कारणों से तथा पर्यायान्तर से आत्मा अनित्य है। जैनागमों में पर्यायांश की दृष्टि से आत्मा अनित्य किन्तु द्रव्यांश की दृष्टि से आत्मा नित्य है।

आत्मा शरीर से भिन्न भी है और अभिन्न भी है। स्वरूप की दृष्टि से भिन्न है और संयोग तथा उपकार की दृष्टि से अभिन्न है। आत्मा का स्वरूप चैतन्य है तथा शरीर का स्वरूप जड़ है। इसलिए दोनों भिन्न हैं। संसारावस्था में आत्मा और शरीर का दूध—पानी की तरह, लौह अग्निपिण्ड की तरह एकात्म संयोग होता है। इसलिए शरीर से किसी वस्तु का संस्पर्श होने पर आत्मा में सम्वेदन और कर्म का विपाक होता है। जीव की संसारावस्था व्यावहारिक दृष्टि से है। शुद्धनय की अपेक्षा से जीव ज्ञानस्वरूप है। जब तक जीव राग—द्वेष, क्रोध—मोह आदि विकारों से ग्रस्त रहता है, तब तक वह संसार में भटकता हुआ, कर्म विपाक को भोगता है। कर्म बन्धनों को तोड़ने के बाद वह लोकाग्र में जा पहुंचता है और शुद्ध चैतन्य में लीन हो जाता है।